पात्र के अनुकूल शब्द-

सोसती सर्व उपमा जोग बाबू रामदास को लिखा
गनेसदास का रामनाम बांचना/छोटे बड़े को सलाम
आसिरबाद जथा उचित पहुंचे/आगे
यहां कुसल हैं, तुम्हारी कुसल कालीजी
से दिन रात मनाती हूँ।

सीधे साधे शब्द, आडंबर, अलंकारहीन शब्द गहरा प्रभाव डालते। शब्द जहाँ कथ्य सरलता से गंतव्य तक एकदम सही-सही पहुंच जाते हैं। यही तो कविता है जो बोलती है, संवाद करती है, अपनी बात कहती है, दूसरे की सुनती है। त्रिलोचन जी ने एक साक्षात्कार में कहा था-

''कविता लिखते समय शब्दकोशों से भारी भरकम शब्द खोजकर कविता में रोपने की बजाय इसे जिंदगी की भाषा से ग्रहण करना चाहिए। कविता में नए-नए मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग हो। भाषा स्थानीय संदर्भों से प्रवाहित होती है जिनको समझने के लिए व्याख्याओं और टिप्पणियों का सहारा आवश्यक हो जाता है। किसी भाषा की गहराई में उतरना हो तो उस क्षेत्र के ग्रामीणों से मिलना चाहिए, उनका सुख दु:ख बांटना चाहिए। उनसे बातचीत कीजिए। अशिक्षितों, अनपढ़ों के बीच रहिए। भाषा का मूल रूप और सही रूप वहीं मिलता है। भाषा को नया तेवर मिलता है।

(महावीर अग्रवाल को दिए गए साक्षात्कार का अंश त्रिलोचन का रचना संसार पृ. सं. 76-77)

त्रिलोचन के कवि व्यक्तित्व के गठन में परिवेश ने अहम् भूमिका निभाई। उनके पिता ठाकुर जगरदेव सिंह घर में बहुत सधे स्वर में प्रेम से गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का पाठ करते थे। त्रिलोचन ने उस रामचरितमानस के पाठ के उस समय की समझ और कविता की स्थिति समझ के अंतर का स्पष्ट विवेचन किया है। वे कहते हैं-

''पिता के मुंह से सुना गया रामचरितमानस बचपन में कविता का कथा तत्व और प्रवाह, आदर्श मुझे प्रभावित करते थे। उम्र बढ़ने और अध्ययन के कारण धीरे-धीरे कथा तत्व और प्रवाह तो गौण हो गए, तुलसी काव्य की भाषा, कथ्यों का लोकपक्ष, शिल्प, छंद मुझे ज्यादा प्रभावित करने लगे-

अच्छा बाँच लेते हो रामायन
तुम्हारे बाबू कहते थे जैसे
अब कोई क्या कहेगा
उनकी भीतर की आँख खुली थी
सुर भी क्या कंठ से निकलता था
जैसे आषाढ़ के मेघ की गरज
(ताप के ताए हुए दिन: 1980)

उन्होंने पाया कि तुलसी ने पौराणिक राम को, ईश्वर राम को लोक संदर्भ के अनुकूल ढाल कर तत्कालीन समाज की जरूरतों के अनुकूल प्रस्तुत किया। त्रिलोचन ने रामचरितमानस की रचना प्रक्रिया की गहन पड़ताल की। यह उनके लिए प्रबल जिज्ञासा का विषय था कि रामचरित मानस में ऐसे कौन से तत्व थे जिनका पाठक वर्ग सबसे निचले तबके से ऊपर तक फैला है, कविताएं जुबां पर हैं और साढ़े चार सौ साल से भी अधिक समय से पाठक के मन मस्तिष्क में वही जगह बनाए हुए हैं। इस काव्य की भाषिक संरचना, छंद योजना, लोकरुचि, परंपरा, अपेक्षाओं के अनुकूल कथ्य को कविता के व्याकरण के सभी अवयवों ने उन्हें प्रभावित किया। छंद, सोरठा, दोहा, चौपाई आदि में उन्हें नवोन्मेष का नया द्वार खुलता दिखाई पड़ा। तभी तो उन्होंने हाथ उठाकर घोषणा की-

तुलसी बाबा, भाषा मैंने तुमसे सीखी
मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो।
(दिगंत)

कवि व्यक्तिगत के भाषिक संघटन में तुलसी के बाद निरालाजी ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। साहित्यिक शब्दावली में कहें तो त्रिलोचन की रक्त शिराओं से कबीर, तुलसी, निराला ही बह रहे थे। उनमें निराला के ही भाषाई संस्कार थे। दरअसल हिंदी साहित्य में एक ऐसा पथरीला रास्ता रहा है जिस पर चलने वाले पथिक फक्कड़, अलमस्त थे, परंपराओं, लीक पर नहीं चलते हैं। उनमें बस पुरानों में तोड़ फोड़ करने, एक नया रास्ता बनाने का जुनून रहता है। वे अतीत के स्वरूप में परिवर्तन कर वर्तमान को सार्थक एवं लोकोन्मुखी बनाना चाहते हैं। कबीर, तुलसी, निराला, त्रिलोचन के संघर्ष की प्रकृति ऐसी ही रही। उन्होंने अपनी समकालीन विसंगतियों के विरुद्ध संघर्ष किया, विरोध झेला पर एक नया संसार दिया। निराला ने छंदों में नव-नूतन प्रयोग किया। त्रिलोचन तो उनकी प्रखरता, निर्भयता एवं समय को लांघने के साहस से अभिभूत थे। निराला जी ने परंपरागत छंदों का विरोध किया। 'परिमल' की भूमिका में निराला जी ने लिखा है-

मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों में मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है।

(परिमल की भूमिका, पृ. 14)

प्रगतिशील कवियों, विशेष रूप से शमशेर बहादुर सिंह और त्रिलोचन ने यही तो किया। शमशेर ने उर्दू की ग़ज़लों के प्रचलित व्याकरण में हिन्दी का भाव दिया और त्रिलोचन ने अंग्रेजी के विन्यासपरक सानेट छंद में तोड़-फोड़ कर मात्रा की संख्या में बदलाव कर उसे हिन्दी के भाव में बदला और उन्होंने परंपरागत रोला छंद में भी बदलाव किया। यह थी त्रिलोचन की प्रगतिशीलता, यह था उनका प्रयोग, यह थी उनकी नवोन्मेषी रचना-प्रक्रिया।

त्रिलोचन और भाषा

त्रिलोचन भाषा के प्रति जुनून की हद तक सजग थे। भाषा के संबंध में उनकी एक निश्चित मान्यता रही है। वे कहते हैं कि काव्य की उत्पत्ति लोक परिवेश में ही होती है अत: शब्द भी लोक से ही आना चाहिए। मुहावरे, लोकोक्ति, कथ्य सबका स्रोत तो लोक ही है। त्रिलोचन भाषा गढ़ते हैं और गढ़ने के लिए कच्चा माल लोक से ही लेते हैं। यह प्रगतिवाद का मूल चरित्र भी है। नागार्जुन की कविताओं में कहीं न कहीं मैथिली की छाया रहती ही है और त्रिलोचन की कविताओं में लोक भाषा के रूप में अवधी की छाया रहती है। त्रिलोचन ने 'अमोला' कविता संग्रह पूरी तरह अवधी भाषा में लिखा और बरवै छंद में लिखा। वे लिखते हैं:-

भासा टहइ उहइ सकइ कहनाइ
पावइ ऊ जेकर नगीच रहनाइ

वे पिर्थी अर्थात पृथ्वी को ही अपना विशाल घर मानते हैं और बाहरी जीवन उनका कर्मक्षेत्र-

पिर्थी बिसरइ कबहुन आपनि चाल
दिन बीतइ रितु बीतइ, बीतइ साल।